

बन्नारी अम्मान शुगर्स लिमिटेड,

बनाम

वाणिज्यिक कर अधिकारी एवं अन्य।

22 नवम्बर 2004

[अरिजीत पसायत और सी.के. ठक्कर, न्यायमूर्तिगण]

प्रशासकीय विधि :

वचनबद्ध विबंध और वैध प्रत्याशा -की प्रयोज्यता- गन्ने पर क्रय कर-राज्य सरकार द्वारा सहकारी और सार्वजनिक क्षेत्रों में स्थापित चीनी मिलों के पक्ष में छूट प्रदान करना- तदनन्तर बाद पूर्वव्यापी प्रभाव से इसकी वापसी -अधिकरण द्वारा इस आधार पर लाभ की वापसी को असमर्थनीय ठहराना कि यह वचनबद्ध विबंध और वैध प्रत्याशा के विरुद्ध है-- उच्च न्यायालय द्वारा इसे उलटना- सटीकता -निर्धारित किया गया : जिस व्यक्ति को छूट दी गई है वह निहित अधिकार का दावा नहीं कर सकता-वचनबद्ध विबंध का सहारा तब लिया जा सकता है जब सरकार द्वारा किए गए अभ्यावेदन के आधार पर लाभ प्राप्त करने के लिए उद्योग स्थापित किया गया हो- तथ्यों के आधार पर, उद्योग स्थापित करने के लिए सरकार द्वारा कोई आश्वासन नहीं दिया गया था, इसलिए, वचनबद्ध विबंध लागू नहीं होता- इसके अलावा, राज्य ने लाभ वापस लेने को उचित ठहराने के लिए कोई विशिष्ट आधार नहीं लिया-यद्यपि दावेदार वापसी से पहले सुनवाई के अवसर के हकदार नहीं थे, फिर भी निष्पक्षता अवसर प्रदान करने को न्यायसंगत ठहराती है क्योंकि उच्च न्यायालय ने फाइलों के संदर्भ में उसी के आधार पर दर्ज किया था-साथ ही उच्च न्यायालय ने लाभ की पूर्वव्यापी वापसी के विषय पर विचार नहीं किया-अतः उच्च न्यायालय का आदेश न्यायसंगत नहीं है और मामला वैध प्रत्याशा तथा लाभ की पूर्वव्यापी वापसी के अनुप्रयोग के संबंध में नए सिरे से विचार करने के लिए उच्च न्यायालय को प्रेषित किया जाता है- साक्ष्य अधिनियम, 1872-धारा 115-भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 166 ।

नीतिगत निर्णय - राज्य की कार्रवाई से उसमें बदलाव - वैधता की आवश्यकता - चर्चा की गई।

नीतिगत निर्णय - लगाई गई पाबंदी - उसकी उचितता - निर्धारण।

सिद्धांत :

वचन-बंध - दायरा और उद्देश्य - लागू करने की आवश्यकता - चर्चा की गई।

उचित अपेक्षा - सामान्य सिद्धांत - चर्चा की गई।

राज्य सरकार ने 1975 में सहकारी और सार्वजनिक क्षेत्रों में स्थापित चीनी मिलों के पक्ष में गन्ने पर क्रय कर से छूट, क्रय कर के समतुल्य वार्षिक सब्सिडी के रूप में प्रदान की थी। 1.9.88 के सरकारी आदेश द्वारा छूट वापस ले ली गई और 28.12.88 के पत्र द्वारा इस आदेश को 1.4.1988 से पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू कर दिया गया। अपीलकर्ताओं, जिन्होंने वर्ष 1984 और 1986 में अपनी इकाइयाँ स्थापित की थीं और अपना व्यावसायिक उत्पादन शुरू किया था, ने लाभ की वापसी को यह तर्क देते हुए चुनौती दी कि वे उद्योग स्थापित करने के लिए सरकारी कार्रवाई से प्रेरित हुए थे। अधिकरण ने वचनबद्ध विबंध और वैध प्रत्याशा के सिद्धांतों को लागू करते हुए यह माना कि लाभ की वापसी असमर्थनीय है। उत्तरदाता-राज्य ने विनिर्दिष्ट आदेश याचिका दायर की। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने पाया कि उत्तरदाताओं ने अनुदान प्रदान करने वाले सरकारी आदेशों से पहले अपनी इकाइयाँ स्थापित की थीं; यह कि इकाइयाँ स्थापित करने के लिए सरकार द्वारा कोई प्रलोभन नहीं दिया गया था और उत्तरदाताओं ने सरकारी आदेश के आधार पर कार्य नहीं किया था; यह कि अनुदान प्रदान करने वाले आदेश को जनहित में वापस लिया जा सकता है, अतएव सरकार ने योजना को संशोधित करने के अपने अधिकार का प्रयोग किया; और यह कि उत्तरदाताओं को कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पहुँचा है। अतः, वर्तमान अपीलें प्रस्तुत हैं।

अपीलकर्ताओं ने तर्क दिया कि वचनबद्ध विबंध और वैध प्रत्याशा के सिद्धांत मामले के तथ्यों पर लागू थे; यह कि ऐसा कोई साक्ष्य या सामग्री नहीं थी जो किसी अध्यारोही जनहित के अस्तित्व को दर्शाती हो; यह कि एक कार्यकारी निर्णय के आधार पर लाभ को भूतलक्षी प्रभाव से वापस लेने की कोई संभावना नहीं थी; और यह कि लाभ वापस लेने से पहले अपीलकर्ताओं को सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था।

अपीलों का निपटारा करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया : 1.1. छूट प्राप्त करने वाले किसी व्यक्ति द्वारा कर छूट के संबंध में कोई निहित अधिकार अर्जित नहीं किया जाता है। यदि कोई छूट दी गई है तो उसे किसी भी समय वापस लिया जा सकता है और इसे वापस लिए जाने से पहले किसी समय-सीमा पर जोर नहीं दिया जा सकता है। [273-एफ-जी]

1.2. वचनबद्ध विबंध के सिद्धांत का सहारा केवल तभी लिया जा सकता है जब सरकार द्वारा किए गए अभ्यावेदन के आधार पर, छूट का लाभ उठाने के लिए उद्योग स्थापित किया गया हो। इस सिद्धांत का सहारा लेने के लिए, सिद्धांत का आह्वान करने वाले पक्ष द्वारा याचिका में ही स्पष्ट, सुदृढ़ और सकारात्मक आधार रखा जाना चाहिए तथा बिना किसी सहायक सामग्री के केवल यह कोरी अभिव्यक्ति कि यह सिद्धांत आकर्षित होता है क्योंकि इसका आह्वान करने वाले पक्ष ने सरकार के आश्वासन पर भरोसा करके अपनी स्थिति में बदलाव किया है, इस सिद्धांत की सहायता लेने के लिए पर्याप्त नहीं होगी। न्यायालय सभी पहलुओं पर विचार करने के लिए बाध्य हैं, जिनमें प्राप्त किए जाने वाले परिणाम और व्यापक पैमाने पर जनहित शामिल हैं, क्योंकि इस सिद्धांत की प्रयोज्यता पर विचार करते समय, न्यायालयों को साम्या का पालन करना होता है और साम्या के मूलभूत सिद्धांत न्यायालय के मानस में सदैव विद्यमान होने चाहिए। [273-एफ-जी; 278-जी-एच; 279-ए].

कासिका ट्रेडिंग और अन्य बनाम भारत संघ, [1995] 1 एससीसी 274; श्रीजी सेल्स कॉर्पोरेशन और अन्य बनाम भारत संघ, [1997] 3 एससीसी 398; मेसर्स पवन एलॉयज एंड कास्टिंग प्राइवेट लिमिटेड, मेरठ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य, एआईआर (1997) एससी 3910 और सेल्स टैक्स ऑफिसर और अन्य बनाम श्री दुर्गा ऑयल मिल्स, [1998] 1 एससीसी 573 का हवाला दिया गया।

1.3 जिस समय अपील करने वालों की यूनिट्स लगाई गईं और वाणिज्यिक उत्पादन शुरू हुआ, उस समय सरकार की ओर से कारखानें लगाने का कोई भरोसा या वादा नहीं किया गया था। इसलिए, उस चरण में मामले के तथ्यों पर वचनबद्धता संबंधी विबंधन का सिद्धांत लागू नहीं होता था। [279-एफ]

सैंचुरी स्पिनिंग कंपनी बनाम उल्हासनगर म्युनिसिपल काउंसिल, एआईआर (1971) एससी 1021; राधाकृष्ण बनाम बिहार राज्य, एआईआर (1977) एससी 1496; मोतीलाल पदमपत शुगर मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, [1979] 2 एससीसी 409; भारत संघ बनाम गॉडफ्रे फिलिप्स इंडिया लिमिटेड, [1985] 4 एससीसी 369 और डॉ. अशोक कुमार माहेश्वरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, [1998] 2 सुप्रीम 100, पर अवलंबन किया गया।

भारत संघ बनाम इंडो-अफगान एजेंसीज लिमिटेड, एआईआर (1968) एससी 718; टर्नर मॉरिसन एंड कंपनी लिमिटेड बनाम हंगरफोर्ड इन्वेस्टमेंट ट्रस्ट लिमिटेड, [1972] 1 एससीसी 857 और शर्मा ट्रांसपोर्ट प्रतिनिधित्वकर्ता डी.पी. शर्मा बनाम आंध्र प्रदेश सरकार व अन्य, [2002] 2 एससीसी 188, का उल्लेख किया गया।

सेंट्रल लंदन प्रॉपर्टी ट्रस्ट लिमिटेड बनाम हाई ट्रीज हाउस लिमिटेड, (1947) 1 केबी 130; कोम्ब बनाम कोम्ब, [1951] 2 केबी 215; टूल मेटल मैनुफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड बनाम टंगस्टन इलेक्ट्रिक कंपनी लिमिटेड, [1955] 2 ऑल ईआर 657 और ग्रैंट बनाम ग्रेट

बोल्डर गोल्ड माइंस प्रोप्रायटरी लिमिटेड, [1939] 59 सीएलआर 641 (ऑस्ट्रेलिया), का उल्लेख किया गया।

ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी, का उल्लेख किया गया।

2.1. एक वैध अपेक्षा ऐसा पर्याप्त हित प्रदान कर सकती है जो किसी ऐसे व्यक्ति को, जो किसी मूल अधिकार के अस्तित्व को नहीं दर्शा सकता है, न्यायिक समीक्षा के लिए आवेदन करने हेतु न्यायालय की अनुमति प्राप्त करने में सक्षम बना सके। इस बात पर सामान्य सहमति है कि 'वैध अपेक्षा' आवेदक को न्यायिक समीक्षा के लिए मुकदमा दायर करने का अधिकार प्रदान करती है और वैध अपेक्षा के सिद्धांत को अधिकतर किसी ऐसे निर्णय को लिए जाने से पहले निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार तक ही सीमित रखा जाना है, जिसके परिणामस्वरूप किसी वादे को नकारा जाता है या किसी वचनबद्धता को वापस लिया जाता है। यह सिद्धांत सीधे प्रशासनिक अधिकारियों से राहत का दावा करने की गुंजाइश नहीं देता है क्योंकि इसमें इस तरह का कोई पुख्ता या स्पष्ट अधिकार शामिल नहीं होता है। जहाँ किसी व्यक्ति की वैध अपेक्षा एक विशेष निर्णय लेने से पूरी नहीं होती है, तो निर्णय लेने वाले को किसी सर्वोपरि जनहित को दिखाकर ऐसी अपेक्षा को अस्वीकार किए जाने को न्यायोचित ठहराना चाहिए। [274-बी-सी-डी]

भारत संघ बनाम हिंदुस्तान डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन व अन्य, एआईआर (1994) एससी 998, पर अवलंबन किया गया।

2.2 प्रत्येक राज्य की कार्रवाई तर्कसंगत होनी चाहिए और इसका परिणाम यह होता है कि बिना किसी तर्कसंगत आधार के किया गया कार्य *स्वतः ही* मनमाना है। प्रश्न यह है कि आक्षेपित कार्रवाई मनमानी है या नहीं, इसका उत्तर किसी दिए गए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर दिया जाना है। ऐसे मामलों में लागू करने के लिए एक बुनियादी और स्पष्ट परीक्षण यह देखना है कि क्या आक्षेपित कार्रवाई से कोई स्पष्ट सिद्धांत उभर कर

सामने आ रहा है और यदि ऐसा है, तो क्या वह वास्तव में तर्कसंगतता की कसौटी को पूरा करता है। जहाँ किसी कार्य को करने के लिए एक विशेष तरीका निर्धारित किया गया है, वहाँ उस प्रक्रिया को अपनाने में कोई बाधा नहीं है; एक अलग तरीके से कार्य करने का विचलन, जो किसी ऐसे स्पष्ट सिद्धांत को प्रकट नहीं करता है जो तर्कसंगत हो, स्वयं ही मनमाना माना जाएगा। [275-ए-बी; 274-जी-एच]

2.3 प्रतिबंध की तर्कसंगतता का निर्धारण वस्तुनिष्ठ तरीके से और आम जनता के हित के दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए, न कि उन व्यक्तियों के हितों के दृष्टिकोण से जिन पर प्रतिबंध लगाए गए हैं या अमूर्त विचारों के आधार पर। किसी प्रतिबंध को केवल इसलिए अतार्किक नहीं कहा जा सकता क्योंकि किसी दिए गए मामले में यह कठोरता से काम करता है। इसमें कोई अन्याय शामिल है या नहीं, इसका निर्धारण करने में, कथित रूप से उल्लंघन किए गए अधिकार की प्रकृति, लगाए गए प्रतिबंध का अंतर्निहित उद्देश्य, इसके द्वारा दूर की जाने वाली बुराई की सीमा और तात्कालिकता, थोपे जाने की असमानता, न्यायिक निर्णय लेने के प्रासंगिक समय पर प्रचलित स्थिति, वैध अपेक्षा की तर्कसंगतता का निर्धारण संबंधित व्यापार या व्यवसाय से संबंधित परिस्थितियों के संबंध में किया जाना चाहिए। किसी विशिष्ट व्यक्ति के पक्ष में भी किसी विशेष व्यवसाय का व्यवस्थापन तर्कसंगत है जहाँ देश के हित शामिल हों या जहाँ व्यवसाय देश की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता हो। [277-डी-ई-एफ]

परभणी ट्रांसपोर्ट को-ऑपरेटिव सोसाइटी लिमिटेड बनाम रीजनल ट्रांसपोर्ट अथॉरिटी, औरंगाबाद व अन्य, एआईआर (1960) एससी 801; श्री मीनाक्षी मिल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ, एआईआर (1974) एससी 366; हरी चंद सारडा बनाम मिजो डिस्ट्रिक्ट काउंसिल व अन्य, एआईआर (1967) एससी 829; कृष्णन ककांत बनाम केरल सरकार व अन्य, एआईआर (1997) एससी 128 और भारत संघ व अन्य बनाम इंटरनेशनल ट्रेडिंग कंपनी व अन्य, (2003) 5 एससीसी 437, पर भरोसा किया गया।

जी.बी. महाजन बनाम जलगाँव म्युनिसिपल काउंसिल, एआईआर (1991) एससी 1153; भारत संघ बनाम हिंदुस्तान डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन व अन्य, एआईआर (1994) एससी 998 और पंजाब कम्युनिकेशंस लिमिटेड बनाम भारत संघ व अन्य, एआईआर (1999) एससी 1801, का उल्लेख किया गया।

अटॉर्नी जनरल फॉर न्यू साउथ वेल्स बनाम क्विन, (1990) 64 ऑस्ट्रेलियन एलजेआर 327, का उल्लेख किया गया।

एच.डब्ल्यू.आर. वेड द्वारा प्रशासनिक विधि छठा संस्करण, का उल्लेख किया गया।

3. संविधान के अनुच्छेद 166 का खंड (1) यह अपेक्षा करता है कि राज्य सरकार की सभी कार्यपालिका कार्रवाई राज्यपाल के नाम पर की जाएगी। यह यह निर्धारित नहीं करता है कि सरकार की कार्यपालिका कार्रवाई कैसे की जानी है, बल्कि केवल वह तरीका बताता है जिसके तहत ऐसे कार्य को व्यक्त किया जाना है और खंड (2) उन तरीकों को निर्धारित करता है जिनसे आदेश को प्रमाणित किया जाना है। न्यायालय को यह देखना होता है कि क्या इसकी आवश्यकता के सार का अनुपालन किया गया है। क्या अनुच्छेद 166 के संदर्भ में कोई सरकारी आदेश है, इसका निर्णय प्रत्येक मामले की वास्तविक पृष्ठभूमि से किया जाना है। [278-डी; 278-ई-एफ]

आर. चित्रलेखा आदि बनाम मैसूर राज्य व अन्य, एआईआर (1964) एससी 1823, का उल्लेख किया गया।

4. चूँकि वापसी को न्यायोचित ठहराने वाले तथ्यात्मक आधार की सत्यता विवाद के घेरे में है, इसलिए निष्पक्षता निश्चित रूप से अपीलकर्ताओं को अपना मामला प्रस्तुत करने का अवसर दिए जाने की मांग करती थी। इसके अलावा उच्च न्यायालय ने इस तर्क पर विचार नहीं किया कि किसी कार्यकारी आदेश द्वारा लाभ को पिछली तारीख से वापस लेने की कोई गुंजाइश नहीं थी। इसलिए, उच्च न्यायालय का यह आदेश, जिसमें वापसी को

न्यायोचित ठहराया गया था, कानूनन मान्य नहीं है और परिस्थितियों की उपयुक्तता को देखते हुए, मामले को वैध अपेक्षा को लागू करने की दलील और लाभ को पिछली तारीख से वापस लेने का निर्देश देने वाली कार्रवाई की वैधता के संबंध में नए सिरे से विचार करने के लिए उच्च न्यायालय को वापस भेजा जाता है। [280-डी-ई; जी-एच; 281-ए-बी]

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: 2002 की दीवानी अपील संख्या 8605 ।

1998 की विनिर्दिष्ट आदेश याचिका संख्या 3311 में मद्रास उच्च न्यायालय के दिनांक 17.4.2002 के निर्णय और आदेश से।

साथ में

2002 की दीवानी अपील संख्या 8606।

अपीलकर्ताओं के लिए ए.एम. सिंघवी, प्रभा शंकर मिश्रा, ए.के. गांगुली, वी. गिरी, विकास मेहता, अमित भंडारी, सुश्री इंदु मल्होत्रा, अंबरीश कुमार, एन. प्रसाद, संदीप, के.के. मणि।

उत्तरदाताओं के लिए तमिलनाडु राज्य के अपर महाधिवक्ता आर. मुथुकुमारसामी और सुब्रमण्यम प्रसाद।

न्यायालय का निर्णय **न्यायमूर्ति अरिजीत पसायत** द्वारा सुनाया गया:

इन दोनों अपीलों में समान प्रश्न शामिल हैं और इसलिए, जहाँ तक वे प्रासंगिक हैं, तथ्यात्मक स्थिति को ध्यान में रखते हुए इस संयुक्त निर्णय द्वारा इनका निपटारा किया जाता है। अपीलकर्ता मद्रास उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा दिए गए निर्णय की सत्यता पर सवाल उठा रहे हैं, जिसने यह माना था कि अपीलकर्ताओं को अनुदान के रूप में दिए गए लाभों की वापसी उचित थी। अपीलकर्ताओं ने जी.ओ.एम.एस संख्या 989 दिनांक 1.9.1988, जो उन मिलों के मामले में खरीद कर छूट को बंद करने का निर्देश देती है जिन्होंने पांच वर्ष की अवधि के दौरान 300 लाख रुपये की सीमा को पार कर लिया था, और सरकारी पत्र दिनांक 28.12.1988, जिसने उपरोक्त जी.ओ.एम.एस. संख्या 989 दिनांक

1.9.1988 को 1.4.1988 से पूर्वव्यापी से प्रभावी बना दिया, की वैधता को चुनौती दी थी। शुरुआत में ये विनिर्दिष्ट आदेश याचिकाएं उच्च न्यायालय के समक्ष दायर की गई थीं, लेकिन तमिलनाडु कराधान विशेष न्यायाधिकरण (इसके बाद 'न्यायाधिकरण' के रूप में संदर्भित) के गठन के बाद इन रिट याचिकाओं को न्यायाधिकरण को स्थानांतरित कर दिया गया, जिसने यह माना कि वचनबद्ध विबंध और वैध अपेक्षा के सिद्धांतों को लागू करने पर, लाभ की वापसी कानूनन मान्य नहीं थी। राज्य ने उच्च न्यायालय के समक्ष इस निर्णय की सत्यता पर सवाल उठाया, जिसने ऊपर उल्लेखित अनुसार, न्यायाधिकरण द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को उलटते हुए जी.ओ.एम.एस. और सरकारी पत्र को वैध ठहराया। यह निर्णय इन अपीलों में चुनौती का विषय है।

अपीलों के समर्थन में अपीलकर्ताओं द्वारा उठाए गए मुख्य रुख इस प्रकार हैं:

1. वचनबद्ध विबंध और वैध अपेक्षा के सिद्धांत मामले के तथ्यों पर लागू होते थे। ऐसा कोई तथ्य या सामग्री नहीं थी जो उपरोक्त सिद्धांत के लागू होने की संभावना को खारिज करने वाले किसी सर्वोपरि जनहित के अस्तित्व को दर्शाती हो और लाभ को पिछली तारीख से वापस लेने की कोई गुंजाइश नहीं थी। किसी भी स्थिति में, लाभों की वापसी से पहले, सुनवाई का कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया था। उच्च न्यायालय ने त्रुटिवश यह मान लिया कि राज्य सरकार ने कोई प्रति उत्तर दायर नहीं किया था। वे सामग्रियां जो उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गईं और जिनके आधार पर यह निर्णय लिया गया कि सरकार का निर्णय उचित था, उन्हें अभिवचनों और बहसों के दौरान तर्क में शामिल तक नहीं किया गया था। ऐसी सामग्रियों को प्रस्तुत किए जाने से अपीलकर्ता आश्चर्यचकित रह गए जो अपीलकर्ताओं पर प्रकट भी नहीं की गई थीं। उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई फाइलों की विषय-वस्तु, जिन पर अपीलकर्ताओं के खिलाफ निर्णय देने के लिए भरोसा किया गया था, अपीलकर्ताओं को ज्ञात नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का स्पष्ट उल्लंघन हुआ था। सरकार का दिनांक 28.12.1988 का पत्र किसी निर्णय का संदर्भ देता है,

लेकिन भारत के संविधान, 1950 (संक्षेप में 'संविधान') के अनुच्छेद 166 के तहत आवश्यक प्रमाणीकरण के अभाव में यह निष्प्रभावी है। किसी भी स्थिति में, एक कार्यकारी निर्णय के आधार पर लाभ को पूर्वव्यापी वापस लेना अस्वीकार्य है।

जवाब में, उत्तरदाता-राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अपीलकर्ता यह दिखाने के लिए कोई भी साक्ष्य या सामग्री प्रस्तुत करने में विफल रहे हैं कि वे उद्योगों को स्थापित करने के लिए किसी भी तरह से किसी सरकारी कार्रवाई से प्रेरित हुए थे। वास्तव में, तमिलनाडु सरकार ने दिनांक 24.10.1975 के जी.ओ.एम.एस. संख्या 1294 के माध्यम से "सहकारी और सार्वजनिक क्षेत्रों" में स्थापित चीनी मिलों के पक्ष में गन्ने पर खरीद कर से छूट, गन्ने पर खरीद कर के बराबर वार्षिक सब्सिडी के रूप में प्रदान की थी। इस बात में किसी भी प्रकार की गलतफहमी की कोई गुंजाइश नहीं थी कि यह चीनी उत्पादन के क्षेत्र में किसी निजी क्षेत्र की भागीदारी पर लागू होता था। सी.ए. संख्या 8606/2002 यानी *पोन्नी शुगर्स (इरोड) लिमिटेड बनाम तमिलनाडु सरकार व अन्य* के मामले में व्यावसायिक उत्पादन 27.1.1984 को और सी.ए. 8605/2002 यानी *बन्नारी अम्मान शुगर्स लिमिटेड बनाम वाणिज्यिक कर अधिकारी व अन्य* के मामले में 22.1.1986 को शुरू हुआ था। अपीलकर्ताओं ने सहकारी और सार्वजनिक क्षेत्र की मिलों के समान छूट का दावा करते हुए बाद में सरकार को केवल प्रतिवेदन दिया था। चूँकि इसमें कोई प्रलोभन या आश्वासन नहीं था, इसलिए किसी भी वचनबद्ध विबंध का प्रश्न ही नहीं उठता था। जहाँ तक वैध अपेक्षा के पहलू का संबंध है, यह बहुत अच्छी तरह से ज्ञात है कि दिए गए लाभ को वापस लिया जा सकता है और यदि इस जानकारी के साथ इकाइयाँ स्थापित की जाती हैं, तो वैध अपेक्षा का सिद्धांत लागू नहीं होता है। उच्च न्यायालय ने तथ्यात्मक पहलुओं पर निम्नलिखित निष्कर्ष दर्ज किए।

- (1) उत्तरदाताओं ने अनुदान देने वाले सरकारी आदेशों से पहले अपनी इकाइयाँ स्थापित की थीं और उनके पास छूट का दावा करने का कोई निहित अधिकार नहीं है।

- (2) इकाइयाँ स्थापित करने के लिए सरकारी आदेशों में कोई प्रलोभन नहीं दिया गया था।
- (3) उत्तरदाताओं ने इकाइयाँ स्थापित करने के लिए सरकारी आदेशों के आधार पर कार्य नहीं किया है।
- (4) अनुदान देना एक रियायत है और सरकार के पास जनहित में योजना में बदलाव करने के ठोस कारण हैं।
- (5) उत्तरदाताओं को कोई नुकसान नहीं पहुँचा है क्योंकि यह योजना इकाइयों को व्यावहारिक बनाने के उद्देश्य से थी और संशोधित योजना उस सीमा तक सुरक्षा उपाय प्रदान करती है।
- (6) अनुदान देने वाले आदेश को सार्वजनिक हित में वापस लिया जा सकता है। सरकार ने सार्वजनिक राजस्व के हित में योजना को संशोधित करने के अपने अधिकार का प्रयोग किया है।

वर्तमान अपीलकर्ताओं द्वारा न्यायाधिकरण और उच्च न्यायालय के समक्ष लिए गए रुख को खारिज कर दिया गया था। प्रस्तुत की गई फाइलों के संदर्भ में, कुछ तथ्यात्मक निष्कर्ष निकाले गए थे, जिनकी सत्यता इन अपीलों में मुख्य चुनौती है।

विबंध समता का एक नियम है जिसने हाल के वर्षों में नए आयाम हासिल किए हैं। इस देश के साथ-साथ इंग्लैंड में भी न्यायालयों द्वारा विबंध के एक नए वर्ग को मान्यता दी जाने लगी है। 'वचनबद्ध विबंध' के सिद्धांत ने हाल के वर्षों में महत्व प्राप्त किया है, हालांकि कुछ शुरुआती मामलों में इस पर धुंधला सा ध्यान दिया गया था। इस विषय पर प्रमुख मामला *सेंट्रल लंदन प्रॉपर्टी ट्रस्ट लिमिटेड बनाम हाई ट्रीज हाउस लिमिटेड*, [1947] 1 केबी 130 है। *हाई ट्रीज मामले (उपरोक्त)* में प्रतिपादित नियम *किंग्स पीठ* के समक्ष *कोम्ब बनाम कोम्ब*, [1951] 2 केबी 215 में पुनः विचार के लिए आया। उसमें न्यायालय ने यह व्यवस्था दी कि *हाई ट्रीज मामले (उपरोक्त)* में उल्लिखित सिद्धांत यह है कि, जहाँ एक पक्ष ने अपने शब्दों या आचरण द्वारा दूसरे पक्ष से कोई ऐसा वादा या आश्वासन दिया है जो उनके बीच के

कानूनी संबंधों को प्रभावित करने और तदनुसार उस पर कार्य किए जाने के उद्देश्य से था, तब, एक बार जब दूसरे पक्ष ने उसकी बात मान ली है और उस पर कार्य किया है, तो वादा या आश्वासन देने वाले पक्ष को बाद में पिछले कानूनी संबंध पर वापस लौटने की अनुमति नहीं दी जा सकती है मानो उसके द्वारा ऐसा कोई वादा या आश्वासन दिया ही नहीं गया था, बल्कि उसे अपने कानूनी संबंधों को उस योग्यता/शर्त के अधीन स्वीकार करना होगा जिसे उसने स्वयं इस प्रकार पेश किया है, भले ही इसे कानून के दृष्टिकोण से किसी प्रतिफल का समर्थन प्राप्त न हो, बल्कि केवल उसके शब्द का समर्थन प्राप्त हो। लेकिन वह सिद्धांत वाद का कोई ऐसा कारण उत्पन्न नहीं करता है, जो पहले से मौजूद नहीं था; इसलिए, जहाँ कोई ऐसा वादा किया जाता है जिसे किसी प्रतिफल का समर्थन प्राप्त नहीं है, वहाँ वचनग्रहीता उस वादे के आधार पर मुकदमा नहीं ला सकता है। *हार्ड ट्रीज* मामले (उपरोक्त) में प्रतिपादित सिद्धांत को हाउस ऑफ लॉर्ड्स द्वारा भी *टूल मेटल मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड बनाम टंगस्टन इलेक्ट्रिक कंपनी लिमिटेड*, [1955] 2 ऑल ईआर 657 में मान्यता दी गई थी। उस सिद्धांत को इस न्यायालय द्वारा *भारत संघ बनाम इंडो-अफगान एजेंसीज लिमिटेड*, एआईआर (1968) एससी 718 और *टर्नर मॉरिसन एंड कंपनी लिमिटेड बनाम हंगरफोर्ड इन्वेस्टमेंट ट्रस्ट लिमिटेड*, [1972] 1 एससीसी 857 में अपनाया गया था। अन्याय से बचने के लिए, समता के सिद्धांतों पर न्यायालयों द्वारा "वचनबद्ध विबंध" का सिद्धांत विकसित किया गया है। ब्लैक लॉ डिक्शनरी में "वचनबद्ध विबंध" को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि "यह एक ऐसा विबंध है जो तब उत्पन्न होता है जब कोई ऐसा वादा हो जिसके बारे में वचनदाता को तार्किक रूप से यह उम्मीद करनी चाहिए कि वह वचनग्रहीता की ओर से एक निश्चित और पर्याप्त स्वरूप की कार्रवाई या सहनशीलता को प्रेरित करेगा, और जिसमें ऐसी कार्रवाई या सहनशीलता शामिल होती है, और ऐसा वादा तब बाध्यकारी होता है जब केवल वादे को लागू करके ही अन्याय से बचा जा सकता है"। जहाँ तक इस न्यायालय का संबंध है, उसने इंडो अफगान एजेंसीज मामले (उपरोक्त) में इस सिद्धांत का आह्वान किया था, जिसमें अन्य बातों

के साथ-साथ यह निर्धारित किया गया था कि भले ही मामला भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (संक्षेप में 'साक्ष्य अधिनियम') की धारा 115 के नियमों के अंतर्गत न आता हो, जो विबंध के नियम को अधिनियमित करती है, फिर भी सरकार द्वारा किए गए किसी प्रतिवेदन पर कार्य करने वाले पक्ष के लिए यह दावा करने का मार्ग खुला होगा कि सरकार अपने द्वारा किए गए वादे को पूरा करने के लिए बाध्य होनी चाहिए, भले ही वह वादा संविधान के अनुच्छेद 299 द्वारा आवश्यक औपचारिक अनुबंध के रूप में दर्ज न किया गया हो। [देखें *सैंचुरी स्पिनिंग कंपनी बनाम उल्हासनगर म्युनिसिपल काउंसिल*, एआईआर (1971) एससी 1021, *राधाकृष्ण बनाम बिहार राज्य*, एआईआर (1977) एससी 1496, *मोतीलाल पदमपत शुगर मिल्स कंपनी लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*, [1979] 2 एससीसी 409, *भारत संघ बनाम गॉडफ्रे फिलिप्स इंडिया लिमिटेड*, [1985] 4 एससीसी 369 और *डॉ. अशोक कुमार माहेश्वरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य*, (1998) 2 सुप्रीम 100]।

इस पृष्ठभूमि में, "वचनबद्ध विबंध" के सिद्धांत के विकास को समझने के लिए आइए अतीत में थोड़ा पीछे चलते हैं। ऑस्ट्रेलियाई न्यायविद् डिकसन, न्यायमूर्ति ने *ग्रैंट बनाम ग्रेट बोल्डर गोल्ड माइंस प्रोप्रायटरी लिमिटेड*, [1939] 59 सीएलआर 641 (ऑस्ट्रेलिया) में इस प्रकार निर्धारित किया था: "अक्सर केवल यह कहा जाता है कि विबंध का दावा करने वाले पक्ष को अपने नुकसान के लिए कार्य करने हेतु प्रेरित किया गया होना चाहिए। यद्यपि मुख्य रूप से ऐसा कथन सही है और इससे कोई गलतफहमी नहीं होती है, फिर भी यह इस सिद्धांत के आधारभूत उद्देश्य को स्पष्ट रूप से सामने नहीं लाता है। वह उद्देश्य विपरीत पक्ष को उस धारणा पर टिके रहने के लिए मजबूर करके, जिसके आधार पर पहले वाले पक्ष ने कार्य किया था या कार्य करने से परहेज किया था, विबंध का दावा करने वाले पक्ष के नुकसान को टालना या रोकना है। इसका अर्थ यह है कि वह वास्तविक नुकसान या क्षति जिससे कानून सुरक्षा प्रदान करना चाहता है, वह है जो स्थिति के परिवर्तन से उत्पन्न होगी यदि उन धारणाओं को छोड़ दिया जाए जिनके कारण वह स्थिति उत्पन्न हुई थी"। ऊपर

निर्धारित सिद्धांत को लॉर्ड डेनिंग द्वारा *हाई ट्रीज* मामले (उपरोक्त) में दोहराया गया था। इस सिद्धांत को अन्याय से बचने के लिए समता द्वारा विकसित किया गया है। यह न तो अनुबंध के दायरे में है और न ही विबंध के दायरे में है। इसका उद्देश्य, जैसा कि *एंग्लो अफगान एजेंसीज* मामले (उपरोक्त) और *शर्मा ट्रांसपोर्ट प्रतिनिधित्वकर्ता डी.पी. शर्मा बनाम आंध्र प्रदेश सरकार व अन्य*, [2002] 2 एससीसी 188 में उल्लेख किया गया है, कठोर कानून की कड़वाहट को कम करने के लिए इसके स्वरूप से मुक्त समता को बीच में लाना है।

रियायत प्राप्त करने वाले किसी व्यक्ति द्वारा कर के रोके रखने के संबंध में कोई निहित अधिकार अर्जित नहीं किया जाता है। यदि कोई रियायत दी गई है तो उसे किसी भी समय वापस लिया जा सकता है और इसे वापस लिए जाने से पहले किसी समय सीमा पर जोर नहीं दिया जाना चाहिए। वचनबद्ध विबंध के नियम का आह्वान केवल तभी किया जा सकता है जब सरकार द्वारा किए गए प्रतिवेदन के आधार पर, रियायत का लाभ उठाने के लिए उद्योग स्थापित किया गया हो। *कासिका ट्रेडिंग एंड अनदर बनाम भारत संघ एवं अन्य*, [1995] 1 एससीसी 274 में यह माना गया था कि वचनबद्ध विबंध का सिद्धांत अन्याय से बचने के लिए समता द्वारा विकसित एक सिद्धांत का प्रतिनिधित्व करता है।

किसी व्यक्ति को किसी प्रशासनिक प्राधिकारी द्वारा एक निश्चित तरीके से व्यवहार किए जाने की 'वैध अपेक्षा' हो सकती है, भले ही उसके पास निजी कानून में ऐसा व्यवहार प्राप्त करने का कोई कानूनी अधिकार न हो। यह अपेक्षा प्राधिकारी द्वारा किए गए किसी प्रतिवेदन या वादे से उत्पन्न हो सकती है, जिसमें एक निहित प्रतिवेदन शामिल है, या फिर निरंतर चले आ रहे पिछले अभ्यास या परंपरा से उत्पन्न हो सकती है। न्यायिक समीक्षा के विकसित होते कानून में वैध अपेक्षा के सिद्धांत का एक महत्वपूर्ण स्थान है। हालाँकि, इस मामले में इस सिद्धांत की गहराई से खोज करना आवश्यक नहीं है, केवल इतना दर्ज करना ही पर्याप्त है कि एक वैध अपेक्षा ऐसा पर्याप्त हित प्रदान कर सकती है जो किसी ऐसे व्यक्ति को, जो किसी मूल अधिकार के अस्तित्व को नहीं दर्शा सकता है, न्यायिक समीक्षा के लिए

आवेदन करने हेतु न्यायालय की अनुमति प्राप्त करने में सक्षम बना सके। इस बात पर सामान्य सहमति है कि 'वैध अपेक्षा' आवेदक को न्यायिक समीक्षा के लिए पर्याप्त वाद लाने का अधिकार प्रदान करती है और वैध अपेक्षा के सिद्धांत को अधिकतर किसी ऐसे निर्णय को लिए जाने से पहले निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार तक ही सीमित रखा जाना है, जिसके परिणामस्वरूप किसी वादे को नकारा जाता है या किसी वचनबद्धता को वापस लिया जाता है। यह सिद्धांत सीधे प्रशासनिक अधिकारियों से राहत का दावा करने की गुंजाइश नहीं देता है क्योंकि इसमें इस तरह का कोई पुख्ता या स्पष्ट अधिकार शामिल नहीं होता है। ऐसी वैध अपेक्षा का संरक्षण उस स्थिति में अपेक्षा को पूरा करने की मांग नहीं करता है जहाँ कोई सर्वोपरि जनहित इसके विपरीत की आवश्यकता रखता हो। दूसरे शब्दों में, जहाँ किसी व्यक्ति की वैध अपेक्षा एक विशेष निर्णय लेने से पूरी नहीं होती है, तो निर्णय लेने वाले को किसी सर्वोपरि जनहित को दिखाकर ऐसी अपेक्षा को अस्वीकार किए जाने को न्यायोचित ठहराना चाहिए। (देखें *भारत संघ व अन्य बनाम हिंदुस्तान डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन व अन्य*, एआईआर (1994) एससी 998)।

जबकि कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में नीति को बदलने का विवेक, जब किसी कानून या नियम द्वारा बाधित न हो, काफी व्यापक है, लेकिन अनुच्छेद 14 के संदर्भ में जो अनिवार्य और अंतर्निहित है, वह यह है कि नीति में बदलाव निष्पक्ष रूप से किया जाना चाहिए और इससे यह आभास नहीं होना चाहिए कि ऐसा मनमाने ढंग से या किसी गुप्त या दुर्भावनापूर्ण मानदंड द्वारा किया गया था। अनुच्छेद 14 का व्यापक दायरा और राज्य की गतिविधि का क्षेत्र चाहे जो भी हो, इस कसौटी पर अपनी वैधता के लिए अर्हता प्राप्त करने वाली प्रत्येक राज्य कार्यवाई की आवश्यकता एक स्वीकृत सिद्धांत है। अनुच्छेद 16 की बुनियादी आवश्यकता राज्य द्वारा कार्यवाई में निष्पक्षता है, और सार एवं तत्व में गैर-मनमानापन ही निष्पक्षता की धड़कन है। न्यायिक समीक्षा के परिदृश्य में कार्यवाइयां केवल इस सीमा तक जवाबदेह हैं कि राज्य को स्पष्ट कारणों से वैध रूप से कार्य करना चाहिए, न

कि किसी गुप्त उद्देश्य के लिए मनमाने ढंग से। मनमानेपन के अर्थ, वास्तविक महत्व और अवधारणा को सटीक रूप से परिभाषित करने की तुलना में अधिक आसानी से देखा जा सकता है। आक्षेपित कार्रवाई मनमानी है या नहीं, इस प्रश्न का उत्तर अंततः किसी दिए गए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर दिया जाना है। ऐसे मामलों में लागू करने के लिए एक बुनियादी और स्पष्ट परीक्षण यह देखना है कि क्या आक्षेपित कार्रवाई से कोई स्पष्ट सिद्धांत उभर कर सामने आ रहा है और यदि ऐसा है, तो क्या वह वास्तव में तर्कसंगतता की कसौटी को पूरा करता है।

जी.बी. महाजन बनाम जलगांव नगर परिषद, एआईआर (1991) एससी 1153 में इस न्यायालय की टिप्पणियों को प्रशासनिक नीति के समृद्ध क्षेत्र से बाहर रखा गया है, सिवाय इसके कि जहाँ नीति किसी ऐसे कानून के स्पष्ट या निहित प्रावधान के साथ असंगत हो जो उस शक्ति को उत्पन्न करता है जिससे नीति संबंधित है या जहाँ शक्ति के कथित प्रयोग में लिया गया निर्णय ऐसा हो कि उस शक्ति का कोई धारक तर्कसंगत रूप से और सद्भावना से कार्य करते हुए इसे नहीं ले सकता था। लेकिन यहाँ चेतावनी का एक शब्द होना चाहिए। न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने से पहले कुछ अत्यंत गंभीर प्रकट होना चाहिए। यह किसी आवेदक के लिए निर्वहन करने हेतु एक कठिन दायित्व है और होना भी चाहिए। न्यायालय नीति तैयार करने या उसका मूल्यांकन करने में बहुत अच्छे नहीं हैं। कभी-कभी जब न्यायालयों ने नीतिगत आधारों पर हस्तक्षेप किया है, तो कानून के तहत खुली नीतियों के दायरे के बारे में या क्या नीति अनुचित है, इसके बारे में न्यायालय के दृष्टिकोण को सार्वजनिक स्वीकृति नहीं मिली है। इसके विपरीत, नीति पर न्यायिक विचारों को कड़ी आलोचना का सामना करना पड़ा है।

जैसा कि प्रोफेसर वेड (एच.डब्ल्यू.आर. वेड द्वारा प्रशासनिक विधि, छठा संस्करण में) रेखांकित करते हैं कि कानूनी सीमाओं के भीतर राय के बुनियादी मतभेदों के लिए पर्याप्त गुंजाइश है, जिसमें कोई भी पक्ष अतार्किक नहीं होता है। इसलिए, प्रशासनिक विधि में

तर्कसंगतता को शक्ति के उचित मार्ग और अनुचित दुरुपयोग के बीच अंतर करना चाहिए। न ही यह परीक्षण न्यायालय की अपनी तर्कसंगतता का मानक है जैसा कि वह किसी दी गई स्थिति में इसकी कल्पना कर सकती है। ध्यान देने योग्य बिंदु यह है कि कोई चीज़ कानूनी अर्थों में केवल इसलिए अतार्किक नहीं हो जाती क्योंकि न्यायालय इसे नासमझी मानती है।

हिंदुस्तान डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन के मामले (उपरोक्त) में, यह देखा गया था कि जहाँ वैध अपेक्षा का सिद्धांत लागू किया जा सकता है, वहाँ प्राधिकारी द्वारा लिया गया निर्णय मनमाना, अतार्किक और जनहित में न लिया गया पाया जाना चाहिए। यदि यह नीति का प्रश्न है, यहाँ तक कि पुरानी नीति में बदलाव के माध्यम से भी, तो न्यायालय निर्णय में हस्तक्षेप नहीं कर सकते। किसी दिए गए मामले में क्या ऐसे तथ्य और परिस्थितियाँ मौजूद हैं जो वैध अपेक्षा को जन्म देती हैं, यह मुख्य रूप से तथ्य का प्रश्न होगा।

जैसा कि *पंजाब कम्युनिकेशंस लिमिटेड बनाम भारत संघ व अन्य*, एआईआर (1999) एससी 1801 में देखा गया था, नीति में बदलाव एक मूल वैध अपेक्षा को विफल कर सकता है यदि इसे "वेडनेसबरी तर्कसंगतता" के आधार पर न्यायोचित ठहराया जा सके। निर्णय लेने वाले के पास नीति में बदलाव से संबंधित नफ़े-नुकसान को संतुलित करने का विकल्प होता है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि नीति का चुनाव निर्णय लेने वाले के लिए है, न कि न्यायालय के लिए। वैध मूल अपेक्षा केवल न्यायालय को यह पता लगाने की अनुमति देती है कि नीति में वह बदलाव, जो वैध अपेक्षा को विफल करने का कारण है, अतार्किक या विकृत है अथवा ऐसा है जिसे कोई भी तर्कसंगत व्यक्ति नहीं कर सकता था। बिना किसी अतिरिक्त आधार के केवल वैध अपेक्षा पर आधारित दावा *स्वतः* कोई अधिकार नहीं दे सकता। इसकी विशिष्टता इस तथ्य में निहित है कि यह समय की संपूर्ण अवधि को समाहित करता है; वर्तमान, अतीत और भविष्य। यह कथन कितना महत्वपूर्ण है कि आज, कल का बीता हुआ कल है। वर्तमान वैसा ही है जैसा हम इसका अनुभव करते हैं, अतीत एक वर्तमान स्मृति है और भविष्य एक वर्तमान अपेक्षा है। कानूनी उद्देश्यों के लिए, अपेक्षा पूर्वानुमान के समान नहीं है।

किसी अपेक्षा की वैधता का अनुमान केवल तभी लगाया जा सकता है जब वह कानून की मंजूरी पर आधारित हो।

जैसा कि *अटॉर्नी जनरल फॉर न्यू साउथ वेल्स बनाम क्विन*, [1990] 64 ऑस्ट्रेलियन एलजेआर 327 में देखा गया था कि प्रशासनिक शक्ति के प्रयोग को केवल किसी व्यक्ति की वैध अपेक्षाओं की निराशा से बचाने के आधार पर निरस्त करना न्यायालयों को व्यवहारवाद के एक विशेषताहीन समुद्र में बहने के लिए छोड़ देना होगा। इसके अलावा, किसी वैध अपेक्षा (जो कानूनी अधिकार से कम हो) का नकारना किसी शक्ति के प्रयोग को अमान्य करने का आधार बनने के लिए अत्यधिक अस्पष्ट है, जब उसका प्रयोग अन्यथा कानून के अनुरूप हो। यदि किसी दिए गए मामले में वैध अपेक्षा का खंडन गारंटीकृत अधिकार के खंडन के समान है या मनमाना, भेदभावपूर्ण, अनुचित या पक्षपातपूर्ण है, शक्ति का घोर दुरुपयोग है या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है, तो उसे अनुच्छेद 14 को आकर्षित करने वाले सुविख्यात आधारों पर चुनौती दी जा सकती है, लेकिन बिना किसी अतिरिक्त आधार के केवल वैध अपेक्षा पर आधारित दावा *स्वतः* इन सिद्धांतों का आह्वान करने का अधिकार नहीं दे सकता। यह विचार करने के लिए आधारों में से एक हो सकता है, लेकिन न्यायालय को पर्दा हटाकर यह देखना चाहिए कि क्या निर्णय हस्तक्षेप की मांग करने वाले इन सिद्धांतों का उल्लंघन करता है। यह काफी हद तक तथ्यों और ऐसे तथ्यों पर लागू प्रशासनिक कानून के मान्यता प्राप्त सामान्य सिद्धांतों पर निर्भर करता है, और वैध अपेक्षा की अवधारणा, जो प्रशासनिक कार्यवाई की समीक्षा के लिए न्यायालयों द्वारा तैयार की गई अवधारणाओं की एक लंबी सूची में नवीनतम भर्ती है, को किसी विशेष मामले में प्रशासनिक शक्ति के भविष्य के प्रयोग के तरीके पर लागू होने वाली और बाध्यकारी सामान्य कानूनी सीमाओं तक ही सीमित रखा जाना चाहिए। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वैध अपेक्षा की अवधारणा 'वह कुंजी नहीं है जो नैसर्गिक न्याय के खजाने को खोलती है और इसे उन द्वारों को नहीं खोलना चाहिए जो न्यायालय को योग्यता के आधार पर समीक्षा करने से रोकते हैं,' विशेष रूप से,

तब जब अटकलों और अनिश्चितता के तत्व उसी अवधारणा में अंतर्निहित हों। जैसा कि *अटॉर्नी जनरल फॉर न्यू साउथ वेल्स* के मामले में सचेत किया गया था, न्यायालयों को स्वयं पर नियंत्रण रखना चाहिए और कानूनी सीमाओं के तहत ऐसे दावों का उचित सम्मान करना चाहिए। यह एक अच्छे उद्देश्य से दी गई चेतावनी है। अन्यथा, अनुबंधों, अनुज्ञप्तियों आदि में निहित स्वार्थ रखने वाला एक साधन संपन्न वादी, अपने स्वयं के हित को बढ़ावा देने के लिए निदेशक सिद्धांतों द्वारा अनिवार्य कल्याणकारी गतिविधियों को विफल करने में सफलतापूर्वक लिस हो सकता है। यह चेतावनी, विशेष रूप से बदलते परिदृश्य में, और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।

यदि राज्य तर्कसंगतता की सीमाओं के भीतर कार्य करता है, तो राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को ध्यान में रखना और व्यापार नीतियां अपनाना वैध होगा। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अंतिम परीक्षण यह है कि क्या तर्कसंगतता की कसौटी पर नीतिगत निर्णय बेदाग निकलता है।

प्रतिबंध की तर्कसंगतता का निर्धारण वस्तुनिष्ठ तरीके से और आम जनता के हित के दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए, न कि उन व्यक्तियों के हितों के दृष्टिकोण से जिन पर प्रतिबंध लगाए गए हैं या अमूर्त विचारों के आधार पर। किसी प्रतिबंध को केवल इसलिए अतार्किक नहीं कहा जा सकता क्योंकि किसी दिए गए मामले में यह कठोरता से काम करता है। इसमें कोई अनुचितता शामिल है या नहीं, यह निर्धारित करने में—कथित रूप से उल्लंघन किए गए अधिकार की प्रकृति, लगाए गए प्रतिबंध का अंतर्निहित उद्देश्य, इसके द्वारा सुधारे जाने वाले दोष की सीमा और तात्कालिकता, थोपे गए प्रतिबंध की असमानता, प्रासंगिक समय पर मौजूदा परिस्थितियां न्यायिक निर्णय में शामिल होती हैं; वैध अपेक्षा की तर्कसंगतता का निर्धारण संबंधित व्यापार या व्यवसाय से जुड़ी परिस्थितियों के संबंध में किया जाना चाहिए। किसी विशेष व्यवसाय का किसी निर्दिष्ट व्यक्ति के पक्ष में भी प्रणालीकरण करना तर्कसंगत है जहाँ देश के हित शामिल हों या जहाँ व्यवसाय देश की

अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता हो। (देखें *परभणी ट्रांसपोर्ट को-ऑपरेटिव सोसाइटी लिमिटेड बनाम क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरण, औरंगाबाद व अन्य*, एआईआर (1960) एससी 901; *श्री मीनाक्षी मिल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ*, एआईआर (1974) एससी 365; *हरि चंद सारडा बनाम मिर्जा जिला परिषद व अन्य*, एआईआर (1967) एससी 829; *कृष्णन कक्कांत बनाम केरल सरकार व अन्य*, एआईआर (1997) एससी 128 और *भारत संघ एवं अन्य बनाम इंटरनेशनल ट्रेडिंग कंपनी एवं एक अन्य*, [2003] 5 एससीसी 437)।

संविधान का अनुच्छेद 166 सरकार के कार्य के संचालन से संबंधित है। उक्त प्रावधान इस प्रकार है:

"166. एक राज्य की सरकार के कार्य का संचालन। - (1) किसी राज्य की सरकार की समस्त कार्यपालिका कार्रवाई राज्यपाल के नाम से की गई व्यक्त की जाएगी।

(2) राज्यपाल के नाम से बनाए गए और निष्पादित किए गए आदेशों और अन्य दस्तावेजों को ऐसी रीति से अधिप्रमाणित किया जाएगा जैसी राज्यपाल द्वारा बनाए जाने वाले नियमों में विनिर्दिष्ट की जाए, और इस प्रकार अधिप्रमाणित किसी आदेश या दस्तावेज की वैधता पर इस आधार पर प्रश्न नहीं उठाया जाएगा कि वह राज्यपाल द्वारा बनाया गया या निष्पादित किया गया आदेश या दस्तावेज नहीं है।

(3) राज्यपाल राज्य की सरकार के कार्य के अधिक सुविधाजनक लेनदेन के लिए, और मंत्रियों के बीच उक्त कार्य के आवंटन के लिए नियम बनाएगा, जहाँ तक कि वह ऐसा कार्य न हो जिसके संबंध में इस संविधान द्वारा या इसके अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षित है कि वह अपने विवेकानुसार कार्य करे।"

खंड (1) के लिए यह आवश्यक है कि राज्य सरकार की सभी कार्यपालिका कार्रवाई राज्यपाल के नाम से की जानी होगी। इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 166(1) के अनुपालन के लिए शब्दों के किसी विशेष सूत्र की आवश्यकता नहीं है। न्यायालय को यह देखना होता है कि क्या इसकी आवश्यकता के सार का अनुपालन किया गया है। *आर. चित्रलेखा आदि बनाम मैसूर राज्य व*

अन्य, एआईआर (1964) एससी 1823 में एक संविधान पीठ ने यह माना कि इस अनुच्छेद के प्रावधान केवल निदेशात्मक प्रकृति के थे न कि अनिवार्य और यदि उनका अनुपालन नहीं भी किया गया था, तो भी तथ्य के प्रश्न के रूप में यह स्थापित किया जा सकता था कि आक्षेपित आदेश वास्तव में राज्य सरकार या राज्यपाल द्वारा ही जारी किया गया था। खंड (1) यह निर्धारित नहीं करता है कि सरकार की कार्यपालिका कार्रवाई को कैसे निष्पादित किया जाना है; यह केवल उस तरीके को निर्धारित करता है जिसके तहत ऐसी कार्रवाई को व्यक्त किया जाना है। जहाँ खंड (1) अभिव्यक्ति के तरीके के संबंध में है, वहीं खंड (2) उन तरीकों को निर्धारित करता है जिनसे आदेश को अधिप्रमाणित किया जाना है। अनुच्छेद 166 के संदर्भ में कोई सरकारी आदेश मौजूद है या नहीं, इसका न्यायनिर्णयन प्रत्येक मामले की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि से किया जाना होता है।

वचनबद्ध विबंध के सिद्धांत का आह्वान करने के लिए, इसका आह्वान करने वाले पक्ष द्वारा याचिका में ही एक स्पष्ट, सुदृढ़ और सकारात्मक आधार तैयार किया जाना चाहिए; बिना किसी सहायक सामग्री के केवल यह कोरी अभिव्यक्ति कि यह सिद्धांत आकर्षित होता है क्योंकि इसका आह्वान करने वाले पक्ष ने सरकार के आश्वासन पर भरोसा करके अपनी स्थिति में बदलाव कर लिया था, इस सिद्धांत की सहायता लेने के लिए पर्याप्त नहीं होगी। न्यायालय सभी पहलुओं पर विचार करने के लिए बाध्य हैं, जिसमें प्राप्त किए जाने वाले परिणाम और व्यापक रूप से जनहित शामिल हैं, क्योंकि इस सिद्धांत की प्रयोज्यता पर विचार करते समय, न्यायालयों को समता का पालन करना होता है और साम्या के मौलिक सिद्धांत हमेशा न्यायालय के मानस में उपस्थित रहने चाहिए।

श्रीजी सेल्स कॉर्पोरेशन और एक अन्य बनाम भारत संघ, [1997] 3 एससीसी 398 में यह देखा गया था कि एक बार जब जनहित को उस उच्चतर समता के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है जो व्यक्तिगत समता पर हावी हो सकती है, तो यह सिद्धांत उन मामलों में भी लागू होगा जहाँ वादे के संचालन के लिए एक अवधि निर्दिष्ट की गई हो। यदि कोई

सर्वोपरि सार्वजनिक समता मौजूद है, तो सरकार को अपना रुख बदलने की अनुमति होगी और उसके पास अपने द्वारा किए गए प्रतिवेदन से पीछे हटने की शक्ति है, जिसने व्यक्तियों को कुछ ऐसे कदम उठाने के लिए प्रेरित किया था जो इस तरह पीछे हटने के कारण उन व्यक्तियों के हित के प्रतिकूल साबित हुए हों। इसके अलावा, सरकार वादे को रद्द करने के लिए सक्षम है भले ही उसमें कोई स्पष्ट जनहित शामिल न हो, बशर्ते किसी को भी ऐसी प्रतिकूल स्थिति में न डाला जाए जिसे सुधारा न जा सके। इसी तरह का दृष्टिकोण *मेसर्स पवन अलॉयज एंड कास्टिंग प्राइवेट लिमिटेड मेरठ आदि आदि बनाम उत्तर प्रदेश राज्य इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड व अन्य*, एआईआर (1997) एससी 3910 में व्यक्त किया गया था और *ब्रिकी कर अधिकारी और एक अन्य बनाम श्री दुर्गा ऑयल मिल्स और एक अन्य*, [1999] 1 एससीसी 573 में आगे यह माना गया था कि यदि परिस्थिति इसकी मांग करती है तो सरकार अपनी औद्योगिक नीति बदल सकती है और केवल इसलिए कि संकल्प की घोषणा एक विशेष अवधि के लिए की गई थी, इसका यह अर्थ नहीं था कि सरकार किसी भी परिस्थिति में नीति में संशोधन और बदलाव नहीं कर सकती थी। यदि इस सिद्धांत को लागू करने का दावा करने वाले पक्ष ने किसी अधिसूचना के आधार पर कार्य किया था, तो उसे यह पता होना चाहिए था कि ऐसी अधिसूचना में किसी भी समय संशोधन किया जा सकता है या उसे रद्द किया जा सकता है, यदि सरकार को लगता है कि जनहित में ऐसा करना आवश्यक है।

उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज की गई इस तथ्यात्मक स्थिति को देखते हुए कि जिस समय अपीलकर्ताओं की इकाइयाँ स्थापित की गई थीं और व्यावसायिक उत्पादन शुरू हुआ था, उस समय कोई आश्वासन या वादा नहीं था, वचनबद्ध विबंध के सिद्धांत की उस चरण में मामले के तथ्यों पर कोई प्रयोज्यता नहीं थी। हमें इस दलील में कोई सार नहीं दिखता कि किसी विशेष अधिसूचना में दर्शाए गए वादे को संशोधित या परिवर्तित करने का नीतिगत निर्णय लेने से पहले, लाभार्थी को सुनवाई का अवसर दिया जाना चाहिए था। ऐसा तर्क स्पष्ट

रूप से संधारणीय नहीं है। नीतिगत निर्णय लेते समय, सरकार के लिए उन व्यक्तियों को सुनना आवश्यक नहीं है जिन्हें वह लाभ प्रदान किया गया है जिसे वापस लिया जाना है।

अपीलकर्ताओं के अनुसार वैध अपेक्षा का प्रश्न संबंधित जी.ओ.एमएस. द्वारा लाभ प्रदान किए जाने के बाद उत्पन्न होता है। इस मोड़ पर हम अपीलकर्ताओं द्वारा रेखांकित की गई कुछ तथ्यात्मक स्थितियों पर ध्यान देना चाहेंगे जो उत्तरदाताओं द्वारा व्यावहारिक रूप से अविवादित हैं। उच्च न्यायालय ने जो कहा है उसके विपरीत, अभिलेख से यह प्रतीत होता है कि प्रति-शपथपत्र दायर किए गए थे। राज्य की कार्रवाई को सही ठहराने के लिए जिन कारणों ने उच्च न्यायालय को प्रभावित किया, वे विशेष रूप से उच्च न्यायालय के समक्ष तर्क के रूप में नहीं रखे गए थे, और उच्च न्यायालय ने उन कारणों को उसके समक्ष प्रस्तुत की गई फाइलों से निकाला। यद्यपि अपीलकर्ता अधिसूचनाओं से मिलने वाले लाभों में बदलाव या किसी लाभ की वापसी से पहले सुनवाई का कोई अवसर पाने के हकदार नहीं थे, फिर भी जब राज्य ने वापसी को न्यायोचित ठहराते हुए कोई विशिष्ट रुख नहीं अपनाया और उच्च न्यायालय ने सबूत की अपनी मुहर लगाने के लिए फाइलों का संदर्भ लिया, तो वापसी से पहले कोई अवसर देने की आवश्यकता न होने के बावजूद, नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत निश्चित रूप से लागू थे, क्योंकि उच्च न्यायालय ने फाइलों के संदर्भ में उसी के आधार पर निष्कर्ष दर्ज किए थे। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, न्यायाधिकरण या उच्च न्यायालय, जैसी भी स्थिति हो, के समक्ष दायर किए गए शपथपत्रों में वापसी को न्यायोचित ठहराने के लिए कोई विशिष्ट आधार या कारण नहीं दर्शाए गए थे। चूंकि वापसी को न्यायोचित ठहराने वाले तथ्यात्मक आधार की सत्यता विवाद के घेरे में है, इसलिए निष्पक्षता के नाते निश्चित रूप से अपीलकर्ताओं को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाना चाहिए था।

इसके अतिरिक्त, यह एक निश्चित तर्क थी कि किसी कार्यकारी आदेश द्वारा लाभ को पूर्वव्यापी प्रभाव से वापस लेने की कोई गुंजाइश नहीं थी। उच्च न्यायालय ने इस मुद्दे पर विचार नहीं किया है। इसकी भी जांच किए जाने की आवश्यकता है।

उपरोक्त स्थिति को देखते हुए, वापसी को न्यायोचित ठहराने के लिए फाइलों पर भरोसा करके उच्च न्यायालय का निर्णय कानूनन विचारणीय नहीं है, और परिस्थितियों की उपयुक्तता को देखते हुए, उच्च न्यायालय को इस मामले की नए सिरे से सुनवाई करनी चाहिए और इन दो मुद्दों पर निर्णय लेना चाहिए। यह स्पष्ट किया जाता है कि हमने वर्तमान मामले के तथ्यों पर इन मुद्दों के संबंध में कोई राय व्यक्त नहीं की है।

यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि फाइलों को प्रस्तुत करने से किसी विशेषाधिकार का दावा नहीं किया गया था क्योंकि फाइलें उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई थीं और वास्तव में उच्च न्यायालय ने राज्य की कार्यवाई की पुष्टि करने के लिए फाइलों में मौजूद सामग्रियों का संदर्भ लिया था।

हम निर्देश देते हैं कि राज्य सरकार, यदि वह ऐसा चाहे, तो आज से छह सप्ताह के भीतर उच्च न्यायालय के समक्ष अपने अतिरिक्त प्रति-शपथपत्र दायर कर उन कारणों को दर्शाए जिनके कारण दिए गए लाभों को वापस लेना आवश्यक हुआ। वैध अपेक्षा के संबंध में अपीलकर्ताओं के तर्क पर उच्च न्यायालय द्वारा उन सामग्रियों के आलोक में विचार किया जाएगा जो उत्तरदाताओं द्वारा ऊपर दिए गए निर्देशानुसार शपथपत्रों के माध्यम से प्रस्तुत की जाएंगी। हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमने वैध अपेक्षा के अंतर्निहित सिद्धांतों को दर्शाने के अलावा तथ्यात्मक पहलुओं पर कोई राय व्यक्त नहीं की है। एक अन्य बिंदु जो विशेष रूप से उच्च न्यायालय के समक्ष उठाया गया था लेकिन उसके द्वारा उस पर विचार नहीं किया गया है, वह सरकार के एक पत्र द्वारा लाभ को पूर्वव्यापी प्रभाव से वापस लेने के निर्देश देने वाली कार्यवाई की वैधता है। क्या कानून में ऐसा करने की अनुमति है, इसका निर्णय उच्च न्यायालय द्वारा किया जाना है।

उपरोक्त सीमित सीमा तक, मामले को नए सिरे से विचार करने के लिए उच्च न्यायालय को प्रेषित किया जाता है।

अपीलें तदनुसार बिना किसी लागत के आदेश के निस्तारित की जाती हैं।

एन.जे.

अपीलों का निस्तारित किया गया।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता । समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।